खबरें बनती नहीं, चैनलों पर बना जाती हैं

समाचार चैनलों का चरित्र लगातार बदल रहा है और समाचारों का भी। चैनलों को देख कर तो कभी-कभी यह भी लगता है कि उनका को चरित्र है भी या नहीं। दरअसल अब ख़बरें बनती नहीं हैं, बना जाती हैं और चैनल अपने-अपने चरित्र के हिसाब से ख़बरें गढ़ते हैं और फिर ख़बरें तेज़-तेज़ चैनलों पर भागती हैं। न तो इनकी को तसदीक़ की जाती है और न ही दर्शकों के मिज़ाज को समझने-परखने की कोशिश की जाती है। दर्शकों की परेशानी तब और बढ़ती है जब हर चैनल एक ही ख़बर को अपने-अपने तरीके से चलाता (कृपया इसे दिखाता पढ़ें) है। मनोरंजन और हास्य की ख़बरों के नाम पर जिस तरह की सामग्री परोसी जाती है उसे देख कर तो और भी रोना आता है। न ढंग की प्रस्तुति और न ही बेहतर स्क्रिप्ट। भाषा को लेकर तो सतर्कता बरतने की न तो चैनल में बैठे मठाधीशों को फुर्सत है और न ही इस पर ध्यान देने की ज़रूरत महसूस की जाती है। लेकिन एक बात का ध्यान ज़रूर रखा जाता है, ख़बरों को परोसने में कौन चैनल कितना और कहां तक अतिनाटकीराता कर सकता है, इसे लेकर चैनलों में होड़ लगी रहती है।

पत्रकारों पर हमले हों, कैटरीना कैफ़ का जन्मदिन हो, सुबोधकांत सहारा फैशन समारोह में हिस्सा ले रहे हों, शाहरुख खान मन्नत में जश्न मना रहे हों, चैनलों को ख़बर बनाने का मौक़ा मिल जाता है। लेकिन ख़बरें, ख़बरों की तरह नहीं दिखा जाती हैं। चैनल फौरन अदालत लगा बैठते हैं, नैतिकता, आदर्श, मूल्य और न जाने कितने भारी-भरकम शब्दों का इस्तेमाल कर हर उस आदमी को कठघरे में खड़ा कर डालते हैं जो उनके हिसाब से गल्त है। कई चैनल तो इससे भी आगे बढ़ जाते हैं और फैसला भी सुना डालते हैं। चलो हो गई छुट्टी। यानी चैनल ही सिपाही, जज और वकील सब कुछ हैं। शीशों की अदालतों में पत्थरों से गवाही ली जाती है और फैसला सुनाने में देरी भी नहीं की जाती। लेकिन इस अदालत में खुद को खड़ा करने की न तो कभी कोशिश करते हैं और न ही इसकी जरूरत महसूस करते हैं। सारी नैतिकता, सारे आदर्श और सारे मूल्य दूसरों के लिए होते हैं, खुद के लिए नहीं। चैनलों पर यह बात बिल्कुल फिट बैठती है। प्रिंट मीडिया से जुड़े होने की वजह से राह सब कुछ लिख रहां हूं ऐसी बात नहीं है। चैनलों का पल-पल बदलता चरित्र जब दिखा देता है तो मीडिया से जुड़े होने की वजह से शर्मिंदगी होती है, थोड़ी बहुत खीझ भी और फिर चैनलों की जहालत पर गुस्सा भी आता है। भाषा का संस्कार चैनलों ने जिस तरह बदला है उसे देख कर अपनी हिंदी ही समझ में नहीं आती है। और भी कई बातें हैं जो चैनलों के जगमगाते अंधेरे को देख कर अंदर तक कचोटती हैं।

हाल के दिनों में ख़बरों और चैनलों के चरित्र के विरोधाभास ने मुझ जैसे नासमझ और कमअक्ल क़लमघसीट को भी अचंभित कर डाला। ख़बरों से ज्यादा ख़बरों को बनाने की जो एक दीवानगी रोज़ ब रोज़ बढ़ती जा रही है वह चिंता में डालने वाली है। फिर विज्ञापनों का खेल अलग ही होता है। बाज़ार का बाहरी और भीतरी दबाव ख़बरों को ही नहीं चैनलों की विश्वसनीराता पर भी सवाल खड़ा करता है। ऐसे में परेशानी तो उस बेचारे दर्शक को उठानी पड़ती है जो सच जानने और समझने के लिए ख़बरें देखता है लेकिन ख़बरें जब कुछ और कहती हैं और विज्ञापन कुछ और कहानी बयान करता हो तो फिर दर्शक के लिए यह तमीज़ करना तो मुश्किल ही हो जाता है कि सच ख़बरों में है या फिर ख़बरों के पीछे। अभी कहां कितने दिन हुए, राष्ट्रीय स्तर के चैनल आईबीएन सेवन के दो पत्रकारों को लखनऊ में पुलिस वालों ने पीटा और उनमें से एक पर फ़र्जी मुक़दमा लादने तक की धमकी दी थी। चैनल ने इस ख़बर को दो-तीन दिन प्रमुखता से चलाया। चैनल के प्रमुख राजदीप सरदेसा से लेकर चैनल के दूसरे प्रमुख पत्रकारों ने इस पर तीखी टिप्पणी की। अपने को महारथी मानने वाले चैनल से जुड़े पत्रकारों ने मायावती सरकार की खबर लेने में किसी तरह की कोताही नहीं की। आईबीएन सेवन के साथ-साथ कई चैनलों में उत्तर प्रदेश में अपराध के बढ़ते ग्राफ पर लगातार ख़बरें आ रही थीं।

चैनल मुख्यामंत्री मायावती के साथ-साथ पुलिस और प्रशासन को भी कठघरे में खड़ा करने के लिए हर तरह के संज्ञा-विशेषण लगा रहे थे। आईबीएन सेवन के पत्रकारों के साथ यह घटना घटी थी इसलिए उसने इस ख़बर को प्रमुखता से प्रसारित किरा और प्रसारण के दौरान मायावती और उनकी सरकार को जितना कोस सकते थे कोसा। लेकिन हैरत और शर्मिंदगी तब हुई जब इस ख़बर के तुरंत बाद मायावती का गुणगान करता विज्ञापन आईबीएन सेवन पर चलने लगा। वह भी कई मिनट का विज्ञापन। विज्ञापन में मायावती और उनकी सरकार के क़सीदे पड़े गए थे और वही चैनल उसे दिखा रहा था जो ठीक पहले मायावती की सरकार को पानी पी-पी कर कोस रहा था। लेकिन आईबीएन सेवन ही क्यों हर वह चैनल जो मायावती के जंगल राज का जिक्र करने में एक-दूसरे से आगे निकलने की कोशिश में जुटा था, मायावती के गुणगान वाले इस विज्ञापन को उतनी ही प्रमुखता से दिखा रहा था। यानी एक तरफ जंगल राज की खबरें और दूसरी तरफ विकास की राह पर उत्तर प्रदेश को ले जातीं मायावती की तस्वीरें। अब ख़बरों और विज्ञापनों के इस घालमेल पर कौन ऐताबर करे और किस पर करे। ख़बरों में मायावती और उनका कुशासन दिख रहा है लेकिन इन ख़बरों के ठीक बाद वही मायावती उत्तर प्रदेश की मसीहा के तौर पर उन चैनलों पर ही महिमामंडित की जाती हैं। ख़बरों और विज्ञापनों के इस खेल को देख कर तो यही लगता है कि चैनल विधवा-विलाप ही करने में ज्यादा दिलचस्पी रखते हैं। याद करें कुछ चैनलों पर पीएसीएल नाम की एक कंपनी को लेकर भी खूब खबरें चलीं लेकिन फिर चैनलों पर कंपनी के विज्ञापन भी खूब चले। बेचारा दर्शक समझ नहीं पाता है कि सही क्या है ख़बर या विज्ञापन। निजी हितों के लिए भी मीडिया अपना इस्तेमाल किस तरह करता है इसे भी चैनलों से सीखा जा सकता है। मोहब्बत और जंग ही नहीं अब तो धंधे में भी सब जायज़ लगता है।

ख़बरों को दिखाने के लिए ख़बरें बनाने का खेल चल रहा है। नैतिकता, आदर्श और मूल्यों की दुहाई दी जाती है लेकिन अपना चेहरा आईना में देखने की सहमत को चैनल नहीं उठाता। मुंबई धमाकों के बीच थोड़े अंतराल के बाद दो ख़बरें दिखा गई। पहले केंद्रीरा मंत्री सुबोधकांत सहारा के फैशन समारोह में हिस्सा लेने की और फिर शाहरुख खान के घर पर कैटरीना कैफ़ के जन्मदिन समारोह की। इन ख़बरों को चैनलों ने ऐसे-ऐसे 'व्यजनों' के साथ परोसा कि मुझ जैसा आदमी तो परेशान हो उठा। 'मंत्री मस्त' या 'शर्म नहीं आती' जैसे विशेषणों के साथ ख़बरें चलाई गई और सुबोधकांत विलेन की तरह लोगों के सामने पेश किए गए। मुंबई धमाकों में जो शहीद हुए थे या जो जख्मी होकर अस्पतालों में थे, उसकी पीड़ा सुबोधकांत सहारा को नहीं हुई होगी, ऐसा सोचना भी बेवकूफी ही होगी। लेकिन फैशन समारोह में मौजूद चैनलों के रिपोर्टरों और कैमरावालों को धमाकों के बीच यह बड़ा मसाला दिखा और फिर शुरूहो गई चैनलों पर 'फैशन परेड'। सिरासतदानों की संवेदनहीनता के बहाने चैनलों ने इस फैशन समारोह को इतनी बार दिखाया कि इनके बीच मुंब ई धमाकों की गूंज गुम हो गई । सियासतदानों को नसीहत देते वक्त चैनल भूल गए कि उनकी भी कुछ मर्यादा होती है। उनके लिए भी नैतिकता, आदर्श और मूल्य उतने ही जरूरी हैं जितना किसी भी सियासतदां के लिए। सुबोधकांत सहारा के साथ उस फैशन समारोह में कितने चैनलों और मीडिया के खबरनवीस मौजूद थे, किसी चैनल वाले ने यह नहीं बताया और उन्हें कठघरे में खड़ा नहीं किया। दहशतगर्द हमलों के दौरान किसी सियासतदां का फैशन समारोह में हिस्सा लेना सही नहीं है तो उसी तरह तमाम मीडिया वालों सहित उन तमाम लोगों का भी उसमें शिरकत करना गलत है। वे भी उतने ही संवेदनहीन और गैरजिम्मेदार हैं जितने सुबोधकांत सहारा।

चैनलों या कहें मीडिया को यह छूट तो नहीं दी जा सकती कि वे धमाकों के बीच फैशन समारोह में हिस्सा लें, अपने चैनल पर हंसी के कार्यक्रम दिखाएं, सीरियलों में क्या कुछ हो रहा है उसे बताएं और किस हीरो का किस हीरोइन के साथ चक्कर है दिखाते रहें, अपने स्टूडियो में फ़िल्म वालों को बुला कर उनकी आने वाली फ़िल्मों पर बतियाते रहें, सालों पहले किसी चैनल पर हुए हास्य कार्याक्रमों की भौंडी नकल पेश करते रहें और फिर किसी भी मंत्री या नेताओं को कठघरे में खड़ा कर उन पर लानत भेजते रहें। उन पर लानत भेजने से पहले चैनलों को खुद पर लानत भेजना चाहिए था क्योंकि इन धमाकों के बाद भी बाजार चैनलों को चलाता रहा। कंडोम के विज्ञापन भी दिखाए गए और परफ्यूम के नाम पर 'औरतों का जिस्म' भी दिखाया गया। तेल भी बेचे गए और खेल भी होते रहे। जितने चैनल उतने खेल। चैनलों को तब नैतिकता याद नहीं आई और न ही 'सुबोधकांत सहारा' की तरह शर्म। नैतिकता के दो अलग-अलग पैमाने तो नहीं हो सकते, चैनलों के लिए अलग और मंत्रियों या सियासतदानों के लिए अलग। चैनलों के रिपोर्टरों और एंकरों को बोलते देख कर तो कभी ऐसा नहीं लगा कि मुंबईधमाकों की वजह से उन्हें को ई पीड़ा हुई है। उनकी आवाम में किसी तरह का गम़ या दु:ख का एक नन्हा कतरा भी नहीं दिखा दिया। बल्कि ख़बरों को परोसते हुए जिस उत्साह के साथ वे बोल रहे थे, उससे तो ऐसा नहीं लग रहा था कि मुंब ई धमाका को बड़ा हादसा नहीं था जिसमें कइयों की जानें चली गईं बल्कि ऐसा लग रहा था मानो भारत ने क्रिकेट विश्व कप जीत लिया है।

उत्साह से भरे ऐंकरों और रिपोर्टरों पर मुंबई धमाके का जादू सर चढ़ कर बोल रहा था और वे अपने-अपने तरीके से ख़बरों को परोस रहे थे बिना किसी संवेदना के। क्योंकि मुंबई धमाका उनकी दुकानदारी चलाने का एक बेहतर जरिया बन कर सामने आया था और हर चैनल 'धमाकों के इस खेल' में शामिल हो कर अपनी दुकान चमकाने में जुट गया था। कई चैनलों ने धमाकों के बाद दाऊद इब्राहीम को लेकर कई ख़बरें इस तरह चलाईं मानो दाऊद इब्राहीम ने सारी योजना उनके रिर्पोटर-कैमरामैनों के सामने ही बनायी थी। ख़बर को विश्वसनीय बनाने के लिए जितना नाटक कर सकते थे चैनल करते रहे। पुरानी क्लिपिंग्स के साथ ख़बरों को अपने-अपने तरीके से परिभाषित करने का खेल भी इन दिनों खूब चल रहा है चैनलों में। ऐसा करते हुए चैनल अक्सर अपनी सीमा लांघ जाते हैं। उन्हें क्या और कितना दिखाना या बताना है वे यह भूल जाते हैं और नतीजा राह होता है ख़बरें कहीं पीछे छूट जाती हैं और दूसरी चीजें आगे निकल जाती हैं।

चैनलों का यह दूसरा चेहरा है जो किसी भी दूसरे व्यक्ति के सामने आईना रख कर कहता है, इसमें अपना चेहरा देखो लेकिन वह उस आईने को अपने सामने रखने से परहेज़ करता है। ठीक उसी तरह जिस तरह शाहरुख खान के घर पर कैटरीना कैफ की जन्मदिन की पार्टी को चैनलों ने 'बालीवुड के बेशर्म' के नाम से खूब चलाया। यह बात दीगर है कि खुद समाचार चैनलों ने भी 'कैटरीना का जन्मदिन' मनाने में किसी तरह की कंजूसी नहीं दिखाई। गांव-गिराम के मुहावरे में बात करूं तो 'तुम करो तो रासलीला, मैं करूंतो कैरेक्टर ढीला' (अब राह मुहावरा एक फिल्म में गीत के तौर पर इस्तेमाल हुआ है)। आदर्श, नैतिकता और मूल्यों के पैमाने अलग-अलग नहीं हो सकते, चैनलों को इसका ध्यान रखना होगा। वैसे भी नीरा राडिया ने हमारे मीडिया के सामने एक आईना तो रख ही दिया है, किसी को कठघरे में खड़ा करने से पहले उस आईने में अपने आपको निहारना जरूरी हो गया है। क्या हम ऐसा करेंगे, बड़ा सवाल यह है।